Vol 6 Issue 1 October 2016

ISSN No : 2249-894X

Monthly Multidisciplinary Research Journal

Review Of Research Journal

Chief Editors

Ashok Yakkaldevi
A R Burla College, India

Ecaterina Patrascu
Spiru Haret University, Bucharest

Kamani Perera
Regional Centre For Strategic Studies,
Sri Lanka

Welcome to Review Of Research

RNI MAHMUL/2011/38595 **ISSN No.2249-894X**

Review Of Research Journal is a multidisciplinary research journal, published monthly in English, Hindi & Marathi Language. All research papers submitted to the journal will be double - blind peer reviewed referred by members of the editorial Board readers will include investigator in universities, research institutes government and industry with research interest in the general subjects.

Regional Editor

Dr. T. Manichander

Advisory Board

Kamani Perera
Regional Centre For Strategic Studies, Sri Lanka

Ecaterina Patrascu
Spiru Haret University, Bucharest

Fabricio Moraes de AlmeidaFederal
University of Rondonia, Brazil

Anna Maria Constantinovici
AL. I. Cuza University, Romania

Romona Mihaila
Spiru Haret University, Romania

Delia Serbescu
Spiru Haret University, Bucharest, Romania

Xiaohua Yang
University of San Francisco, San Francisco

Karina Xavier
Massachusetts Institute of Technology (MIT), USA

May Hongmei Gao
Kennesaw State University, USA

Marc Fetscherin
Rollins College, USA

Liu Chen
Beijing Foreign Studies University, China

Mabel Miao
Center for China and Globalization, China

Ruth Wolf
University Walla, Israel

Jie Hao
University of Sydney, Australia

Pei-Shan Kao Andrea
University of Essex, United Kingdom

Loredana Bosca
Spiru Haret University, Romania

Ilie Pintea
Spiru Haret University, Romania

Mahdi Moharrampour
Islamic Azad University buinzahra Branch, Qazvin, Iran

Titus Pop
PhD, Partium Christian University, Oradea,
Romania

J. K. VIJAYAKUMAR
King Abdullah University of Science & Technology,Saudi Arabia.

George - Calin SERITAN
Postdoctoral Researcher
Faculty of Philosophy and Socio-Political Sciences
Al. I. Cuza University, Iasi

REZA KAFIPOUR
Shiraz University of Medical Sciences
Shiraz, Iran

Rajendra Shendge
Director, B.C.U.D. Solapur University, Solapur

Nimita Khanna
Director, Isara Institute of Management, New Delhi

Salve R. N.
Department of Sociology, Shivaji University, Kolhapur

P. Malyadri
Government Degree College, Tandur, A.P.

S. D. Sindkhedkar
PSGVP Mandal's Arts, Science and Commerce College, Shahada [M.S.]

Anurag Misra
DBS College, Kanpur

C. D. Balaji
Panimalar Engineering College, Chennai

Bhavana vivek patole
PhD, Elphinstone college mumbai-32

Awadhesh Kumar Shirotriya
Secretary, Play India Play (Trust),Meerut (U.P.)

Govind P. Shinde
Bharati Vidyapeeth School of Distance Education Center, Navi Mumbai

Sonal Singh
Vikram University, Ujjain

Jayashree Patil-Dake
MBA Department of Badruka College Commerce and Arts Post Graduate Centre (BCCAPGC),Kachiguda, Hyderabad

Maj. Dr. S. Bakhtiar Choudhary
Director,Hyderabad AP India.

AR. SARAVANAKUMARALAGAPPA UNIVERSITY, KARAIKUDI,TN

V.MAHALAKSHMI
Dean, Panimalar Engineering College

S.KANNAN
Ph.D , Annamalai University

Kanwar Dinesh Singh
Dept.English, Government Postgraduate College , solan

More.....

Address:-Ashok Yakkaldevi 258/34, Raviwar Peth, Solapur - 413 005 Maharashtra, India
Cell : 9595 359 435, Ph No: 02172372010 Email: ayisrj@yahoo.in Website: www.ror.isrj.org

ISSN: 2249-894X Impact Factor :3.8014(UIF) Volume - 6 | Issue - 1 | October - 2016

Review Of Research

क्षेत्रवाद का ऐतिहासिक सर्वेक्षण

डॉ. सरिता कैन्तुरा

प्रस्तावना:

सन् १८८५ में कांग्रेस के जन्म के साथ ही विभिन्नताओं से ओतप्रोत भारत के अन्दर राष्ट्रवाद की भावना प्रबल हुई। समस्त राष्ट्रवादी आंदोलन के दौर में भारत की एकता को हिन्दू मुस्लिम समस्या का शिकार होना पड़ा। भारतीय राष्ट्रवाद मूल रूप से साम्राज्यवाद विरोधी तेवर लेकर पनपता गया। राष्ट्रवाद निश्चित भू-भाग में रहने वाले लोगों की भावनात्मक एकता का प्रतिरूप होता है। भावनात्मक एकता के एक या कई प्रेरक कारक हो सकते हैं, यथा जातिगत या भाषागत एकता, एक समान इतिहास, एक जैसी सामाजिक व सांस्कृतिक धरोहर एवं परम्परायें, एक जैसा भोगा हुआ इतिहास, धर्म, भौगोलिक परिस्थितियां और एक जैसा आर्थिक तंत्र आदि। चर्चिल जैसे लोग आश्वस्त थे कि भारत एक राष्ट्र नहीं अपितु भौगोलिक अभिव्यक्ति है इस धारणा के पीछे अनेक कारण है। जो भारत की विभिन्नताओं को उजागर करते हैं। ब्रिटिश शासन काल में भारत राजनीतिक दृष्टिकोण से दोहरी शासन पद्धति का शिकार था एक ओर ब्रिटिश भारत था। तो दूसरी ओर देशी रियासतें थी जो देशी नरेशों की प्रजा कहलाती थी और भारत इस तरह की लगभग छः सौ छोटी-बड़ी रिसायतों में विभाजित था।

भारतीय प्रजातंत्र की लडाई में भारतीय राष्ट्रवाद का मूल स्वर विदेशी शासन से मुक्त था। इस मुक्ति के संदेश को जनमानस ने अलग पहचान के रूप में आत्मसात किया। जिसके अन्तर्गत अपनी संस्कृति, भाषा, विचार व अभिव्यक्ति और सामाजिक सरोकार जैसे आयामों में हर भारतीय स्वतंत्र होगा, यह एक धारणा राष्ट्रीय आन्दोलन की रही। परम्पराओं और भौगोलिक विभिन्नताओं के आयामों के अलावा भारत मूलतः कृषि प्रधान देश होने के कारण प्राकृतिक सम्पदा में भी विभिन्नताओं से सराबोर है। भाषायी और सांस्कृतिक विभिन्नताओं एवं धर्म ने राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान भी उन राजनैतिक शक्तियों को प्रेरित किया जो ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरूद्ध राष्ट्रव्यापी आन्दोंलन की पकड़ को ढीला कर देने वाली थी।

सम्प्रदाय को लेकर क्षेत्रीयता को उभारने का पहला उदाहरण १९०५ का बंगाल विभाजन है, जो लार्ड कर्जन की मानसिक प्रवृत्ति का द्योतक समझा जाता है। लार्ड कर्जन ने बंगाल को जनसंख्या के आधार पर हिन्दू बंगाल और मुस्लिम बंगाल की योजना प्रस्तुत करते हुये सर्वप्रथम साम्प्रदायिक क्षेत्रवाद की नींव भारत में डाली। जी०एन० सिंह के अनुसार, ''बंगाल विभाजन का उद्देश्य हिन्दुओं और मुसलमानों को अलग करना ओर एक मुस्लिम प्रांत बनाना था, जिसमें धार्मिक मतभेदों को उजागर किया गया था। पूर्वी बंगाल का पृथक मुस्लिम प्रांत बनाना था, जिसमें धार्मिक मतभेदों को उजागर किया गया था। पूर्वी बंगाल का पृथक मुस्लिम प्रांत बनाकर ब्रिटिश प्रशासन मुसलमानों को उनकी राजभक्ति का पुरस्कार व हिन्दुओं को ब्रिटिश प्रशासन के विरोध का दण्ड देना चाहता था।''[१] यद्यपि यह योजना सफल नहीं हुई लेकिन इसके प्रभाव को नकारा नहीं जा सकता।

अंग्रेजों ने हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच आपसी वैमनस्य पैदा किया और प्रकारांतर में मुसलमान अपने आपको अलग राष्ट्र मानने लगे। उनका कहना था कि हमारा धर्म, संस्कृति और परम्परायें भिन्न है तथा मुसलमानों का अपना अलग अस्तित्व है। परिणाम स्वरूप ३० दिसम्बर १९०६ को मुस्लिम लीग की स्थापना की गयी। इस तरह मुसलमानों को राष्ट्रीय आंदोलन से अलग करने के प्रयास हुये। मुस्लिम लीग की स्थापना तथा मुस्लिम सांप्रदायिकता को जिस प्रकार ब्रिटिश शासन द्वारा बढ़ावा दिया गया। उससे यह पूर्णतः स्पष्ट था कि मुसलमानों को राष्ट्रीय आंन्दोलन से दूर करना उनकी कूटनीति का उद्देश्य रहा। मुस्लिम लीग की स्थापना ब्रिटिश

शासकों के प्रभाव पर हुई उन्होंने मुसलमानों को एक अलग राष्ट्र के रूप में संगठित होने के लिये प्रोत्साहित किया।

मुस्लिम संप्रदायवाद ने द्वि-राष्ट्रीय सिद्धांत को अपनाया तथा मुसलमानों के लिये अलग राष्ट्र की मांग की। दो राष्ट्र के सिद्धांत की तार्किक परिणति इस तथ्य पर पहुंच गयी की धार्मिक, सामाजिक, भाषायी, सांस्कृतिक व जातीय विवाद को समाप्त करने के लिये मुसलमानों के लिये एक स्वतन्त्र राज्य का निर्माण करना आवश्यक है। ज्यों-ज्यों मुस्लिम समाज कांग्रेस से विमुख होता गया, मुस्लिम लोग द्वारा पृथक राज्य की मांग जोर पकड़ती गयी।

साम्प्रदायिकता के आधार पर उभरी क्षेत्रीयता को भारत विभाजन के रूप में १९४७ में देखा जा सकता हैं, जिसके अन्तर्गत अखंड भारत के मुस्लिम बहुसंख्यक वाले क्षेत्र को पाकिस्तान का नाम दिया गया। आधार स्पष्ट था किसी क्षेत्र विशेष में बहुसंख्यक संप्रदाय को अलग मानते हुये अलग राजनीतिक इकाई का रूप दे दिया गया।

देशी रियासतों की संयुक्त भारात में ५५२ के करीब राजनीतिक इकाईयां सामन्तवादी क्षेत्रवाद की प्रतीक थी और ब्रिटेन द्वारा शासित भारत में नौ प्रदेश थे। राजनीतिक स्वरूप की विभिन्नता, क्षेत्रीयताओं के सन्दर्भ में समूचे राष्ट्रीय आंनदोलन के दौर में भारत में मोजूद रही और राष्ट्रीय आन्दोलन में राष्ट्रवाद के संघर्ष के लिये कांग्रेस रियासतों में प्रजामंडल के आन्दोलनों को मजबूती प्रदान करती गयी। राजनीतिक दृष्टिकोण से विभिन्न क्षेत्रों में विखडिंत भारत की यह स्थिति राज्यों के क्लिीनीकरण तक बनी रही।

आजादी के संघर्ष के दौरान यह स्पष्ट था कि भारत जैसे विशाल देश का शासन एक सुगठित संघीय अवस्था के द्वारा ही संचालित हो सकता है। और इस दिशा में कांग्रेस ने अपने अधिवेशनों में भारत के संघीय संवैधानिक स्वरूप के प्रस्ताव पारित किये। १९०९ के मिण्टोमार्ले अधिनियम के अन्तर्गत भी संघीय व्यवस्था को स्वीकारते हुये मुसलमानों को पृथक प्रतिनिधित्व दिया गया जिसके अनुसार मुसलमानों को विशेष चुनाव क्षेत्रों में प्रतिनिधित्व इस प्रकार दिया गया, पंजाब में ५० प्रतिशत बंगाल में ४० प्रतिशत संयुक्त प्रांत में ३० प्रतिशत बिहार में ३५ प्रतिशत और मध्यप्रदेश व मद्रास में १५ प्रतिशत जो अन्ततः भारत विभाजन की एक भूमिका थी।[२]

मुस्लिम समाज को दी गयी इस रियासत को विशेषज्ञो ने पास्किातान की स्वीकृति बताया। आर०सी० मजूमदार के अनुसार, बाद की घटनाओं की रोशनी में कोई भी संदेह नहीं कर सकता कि ब्रिटिश प्रशासन द्वारा संवैधानिक स्तर पर मुस्लिमों को दिये गये प्रतिनिधित्व के कार्य ने तीस साल बाद के पाकिस्तान की नींव रखी थी।[३]

मुस्लिम लींग इन सुधारों से संतुष्ट थी क्योंकि इस अधिनियम द्वारा मुसलमानों के लिये पृथक प्रतिनिधित्व के सिद्धांत को स्वीकार कर लिया गया था। लेकिन भारत में जो राष्ट्रीय चेतना उभर चुकी थी उसके कारण जनता मिण्टोमार्ले अधिनियम से संतुष्ट नहीं थी। फलस्वरूप ब्रिटिश प्रशासन इस अधिनियम द्वारा भारत में शांति व्यवस्था बनाने का प्रयत्न कर रहा था, और बंगाल, पंजाब व अन्य कई प्रान्तों में राष्ट्रीय आंदोलन उग्र रूप धारण करता जा रहा था।

तदनन्तर १९१९ के अधिनियम के अन्तर्गत द्वैध शासन भी संघीय स्वरूप का एक प्रमाण है, इसके मुख्य पहलुओं में प्रांतों में द्वैध शासन की स्थापना, द्वि सदनात्मक केन्द्रीय व्यवस्थापिका, केन्द्र व प्रान्तीय सरकारों के मध्य शक्ति विभाजन व विकेन्द्रीयकरण आदि है। इस अधिनियम ने देश में संसदीय शासन को वास्तविक स्वरूप प्रदान किया।[४]

कांग्रेस के तत्वाधान में १९२८ में गठित नेहरू रिपोर्ट ने भी भारत के लिये संधीय ढांचे की रूपरेखा प्रस्तुत की। यह रिपोर्ट तीन बिन्दुओं पर आधारित थी -[५]

ए-भारत की भावी स्थिति के बारे में।
बी-नागरिकों के मूल अधिकारों के बारे में।
सी-हिन्दू मुस्लिम सम्बन्धों के बारे में।

इस रिपोर्ट की मुख्य संस्तुतियां भारतीय संघवाद की पुष्टि करती है -

१-भारत का राजनैतिक दर्जा वैसा ही हो जैसा कनाड़ा, दक्षिणी अफ्रीका व आस्ट्रेलिया का है।
२-संविधान में मौलिक अधिकारों का प्रावधान होगा।
३-पंजाब और बंगाल के मुस्लिम के लिये स्थान सुरक्षित नहीं रखे जायेंगे।
४-स्थानों का आरक्षण जनसंख्या के आधार पर होगा।
५-सिन्ध और कर्नाटक के प्रान्त अलग होंगे। यदि और भी प्रान्त बनायें जायेंगे तो उनका निर्माण भाषा के आधार पर होगा।

मुस्लिम समाज ने नेहरू रिपोर्ट का विरोध किया और प्रान्तीय स्वायत्ता का ढिंढोरा पिटते हुये १९३५ का भारत अधिनियम पुनः भारत के संघीय स्वरूप को स्पष्ट करता है। इस अधिनियम में ४५१ धाराएं व १५ सूचियां थी। इसके द्वारा भारत के शासन को संधात्मक रूप दिया गया तथा भारतीयों को प्रांतों में स्वायत्त शासन और अखिल भारतीय संघ प्रदान करने की व्यवस्था भी दी गई। इस अधिनियम के अनुसार ब्रिटिश भारत में ११ प्रान्त बनाये गये थे, बंगाल, मद्रास, बम्बई, संयुक्त प्रांत, बिार, उड़ीसा, मध्यप्रान्त, पंजाब सिन्ध, असम, और उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त। इन प्रान्तों में उत्तरदायी शासन की व्यवस्था की गयी। भारत को स्वशासन के मार्ग पर अग्रसर करने के लिये यह एक महत्वपूर्ण कदम था।

साम्प्रदायिक क्षेत्रवाद जिसे पाकिस्तान की स्पष्ट मांग के रूप में परिणित किया गया, को संतुष्ट करने के लिये भारत के संवैधानिक स्वरूप की अगली कड़ी में कैबिनेट मिशन योजना महत्वपूर्ण है जिसकी व्यवस्था के अन्तर्गत निम्न तथ्य महत्वपूर्ण है।[६]

१-भारत में संघीय शासन की स्थापना जिसमें ब्रिटिश भारत के प्रान्त व देशी रियासतें शामिल हो।
२-देशी रियासतों को वह सभी शक्तियां सौंपी जायेंगी जो संघ की इकाईयों को प्राप्त है।
३-भारत के लिये नया संविधान बनाने की योजना।
४-प्रांतों को यह स्वतन्त्रता भी दी गई थी कि वे परस्पर मिलकर अपने पृथक शासन सम्बन्धी वर्ग बना सकते हैं।

कैबिनेट मिशन को अपने उद्देश्यों की पूर्वि करने में कठिनाईयों का सामना करना पड़ा क्योंकि मुस्लिम संप्रदाय अपने पृथक संप्रभु राज्य की मांग पर दृढ़ था, यद्यपि मिशन द्वारा पृथक राज्य की मांग को स्वीकार नहीं किया गया। मिशन का मत था, ''पृथक राज्य से साम्प्रदायिक समस्या हल नहीं हो सकती और पंजाब, बंगाल, असाम के हिन्दु बहुमत वाले जिलों को पाकिस्तान में मिलाना भी उचित नहीं है। भारत भौगोलिक दृष्टि से अखंड है अतः हम पाकिस्तान की मांग को अस्वीकार करते हैं।[७]

मुस्लिम लीग द्वारा कैबिनेट मिशन योजना का विरोध किया गया। जिन्ना ने कहा कैबिनेट मिशन योजना ने हमारी पाकिस्तान की मांग की ओर जो रवैया ग्रहण किया है वह निन्दनीय है, ऐसा करना उसकी भयंकर भूल है जबकि भारत के मुसलमान उस समय तक संतुष्ट नहीं होगे जब तक कि पाकिस्तान के रूप में अपना एक स्वतन्त्र व सत्ता सम्पन्न राज्य स्थापित नहीं कर लेते। हम किसी भी दशा में ऐसा संविधान स्वीकार

करने के लिये तैयार नहीं है जो समस्त भारत के लिये एक केन्द्रिय सरकार की स्थापना करता है। हिन्दूओं और मुसलमानों के पृथक-पृथक धर्म, दर्शन, सामाजिक परम्परायें तथा साहित्य है। वे दो पृथक सभयताओं का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो मुख्य रूप से विरोधी विचारों और धारणाओं पर आधारित है यह पूर्णतः स्पष्ट है कि हिन्दुओं तथा मुसलमानों के ऐतिहासिक प्रेरणास्रोत भिन्न है। अतः एक राज्य के अन्तर्गत ऐसे दो राष्ट्रों को जो एक अलपसंख्यक हो तथा दूसरा बहुसंख्यक हो हुए में बांध देने से असंतोष में वृद्धि होगी तथा ऐसे किसी भी ढांचे का विनाश हो जायेगा, जो ऐसे किसी भी राज्य के लियचे निर्मित किया गया हो।

मौ० इकबाल व चौधरी रहमत अली ने भी पाकिस्तान की मांग को दृढता प्रदान की इस प्रकार मुस्लिम लीग ने स्पष्ट रूप से पाकिस्तान की मांग की। ऐसी स्थिति उत्पन्न होने पर विभाजन को ही उचित आधार माना गया। पाकिस्तान माउन्टबेटन योजना के अन्तर्गत १४ अगस्त १९४७ में भारत विभाजन के फलस्वरूप दो संप्रभु राष्ट्र भारत और पाकिस्तान अस्तित्व में आये। मुहम्मद अली जिन्ना को पाकिस्तान का गर्वनर जनरल व लियाकत अली को प्रधान मंत्री बनाया गया। इस विभाजन का आधार धर्म था।

२६ जनवरी १९५० को भारत प्रभुता सम्पन्न लोकतांत्रिक गणराज्य घोषित हुआ। जिसका स्वरूप धर्मनिरपेक्ष तय किया गया। भारत में देशी रियासतों का विलय हुआ। अंग्रेजी शासन काल में भारत, ब्रिटिश भारत और देशी रियासतों में बटा हुआ था। रियासतों को भारतीय संघ में शामिल करने का श्रेय सरदार पटेल को है। रियासतों का भारत में प्रवेश रियासतों की समस्या का आंशिक हल था। रियासतों के एकीकरण में छोटी छोटी रियासतों को प्रान्तों में विलय करना था, जिसके अन्तर्गत सर्वप्रथम उडीसा और छत्तीसगढ़ की रियासतों को विलीन किया गया। अगला विलय १७ दक्षिणी रियासतों का हुआ। कुछ रियासतों को मिलाकर केन्द्रशासित प्रदेश बना दिया गया। कुछ रियासतों का एकीकरण कर संघों का निर्माण किया गया ये संघ रियासतों में रहने वाले लोगों के भौगोलिक, भाषायी, सामाजिक व सांस्कृतिक तत्वों को ध्यान में रखकर किये गये थे। यथा, सौराष्ट्र जिसमें २२२ रियासतें थी। इस प्रकार भारत में रियासतों का विलीनीकरण हुआ। तथा भारत का स्वरूप संघात्मक निश्चित हुआ और तदनन्तर २६ दिसम्बर १९५२ को राज्य पुर्नगठन आयोग गठित हुआ जो संभवतः मात्र भाषाई क्षेत्रवाद को भी आंशिक रूप से ही संतुष्ट कर सका।

स्वतन्त्रता के बाद –

भाषा, संस्कृति और धर्म के जो प्रश्न परतंत्र भारत में मुखर नहीं थे, उनका आजादी के बाद मुखर होता और क्षेत्रवाद को प्रभावित करना अपने में एक अहम प्रश्न है। जिसके कारण व निदान पर गम्भीरता से विचार होना चाहिये।

स्वतंत्रता आन्दोलन का दूसरा संदेश आर्थिक शोषण से मुक्ति था और इस संदेश ने भारतीय जनमानस में गहरी आशा का संचार किया। अपने उत्पादन के साधनों पर अपना नियन्त्रण एक महत्वपूर्ण तथ्य था जिसने कांग्रेसियों के विरूद्ध भारतीयों को एकजुट किया।

स्वतन्त्रता के बाद विकास भारतीय प्रजातन्त्र का पर्याय बन गया और विकास के लिये जिस स्वतन्त्रता के बाद विकास भारतीय प्रजातंत्र का पर्याय बन गया। और विकास के लिये जिस तरह की राष्ट्रीय सोच जवाहर लाल नेहरू ने रखी, वह अपने में महत्वपूर्ण थी। नेहरू वैज्ञानिक सोच के कायल थे, विज्ञान को जीवन के लिये उपयोगी बनाना और साथ ही व्यक्तित्व को भी संकीर्णता से ऊपर उठकर वैज्ञानिक दृष्टिकोण देना नेहरू जरूरी समझते थे। कितना अच्छा होता कि भाषा और संस्कृति के अलावा आर्थिक और भौगोलिक कारकों को भी अहमियत देते हुये भारतीय संघ का निर्माण होता। भले ही उस स्थिति में राज्यों की संख्या कुछ और बढ़ जाती।

आजादी के बाद रोटी, कपड़ा, मकान, बेरोजगारी, शिक्षा और स्वास्थ्य जैसी मूलभूत आवश्यकताओं के इर्द-गिर्द घूमने वाली राजनीति आज तक इन समस्याओं का निदान नहीं कर सकती। जीवन में आवश्यकताओं का बढ़ना लेकिन उस अनुपात में उत्पादन के साधनों की कमी होना, उत्पादन के साधनों का न बढ़ना और आम आदमी के विकास की अभीप्सा का तेज होना ही एकमात्र कारण है कि अन्ततः राजनीतिक अभिभाज्य वर्ग ने भाषा और संस्कृति के साथ ही क्षेत्रीय विषमता और विकास को राजनीति का मुद्दा बनाया। जिसके फलस्वरूप भारतीय संघ की इकाईयों के अन्तर्गत क्षेत्रीय असंतुलन के स्वर मुखर होते गये।

इस वस्तुस्थिति का परिणाम है कि आज राष्ट्रीय राजनीति पर क्षेत्रीय दल हावी है, और भारत संघ और क्षेत्रवाद आमने-सामने है। हालांकि संविधान निर्माण के समय भारत की विभिन्नता का अहसास संविधान निर्माताओं को था। यह तथ्य इस बात से स्पष्ट है कि संविधान की भूमिका में भारत की एकता और अखंडता पर विशेष जोर दिया गया है। फलस्वरूप केन्द्र को सशक्त बनाया गया। क्योंकि विशेषताओं का मत था कि इकाईयों में उभरती अलगाववादी व पृथक्करण की भावना से देश की एकता व अखंडता को खतरा उत्पन्न हो सकता है। अतः संघ सरकार को यह शक्ति दी गई है कि वह राष्ट्र हित में राज्यों की शक्तियों का अतिक्रमण कर सकता है। ऐसी स्थिति में राज्यों में शक्ति विभाजन को लेकर असंतोष उत्पन्न होना स्वाभाविक था। परिणाम स्वरूप इकाईयां केन्द्रिय नियन्त्रण के दबाव से मुक्त होने के लिये क्षेत्रीय दल गठित करने लगी और क्षेत्रवाद राष्ट्रीय एकता अखंडता व भारतीय संघवाद पर प्रश्नचिन्ह लगा रहा है।

क्षेत्रवाद : अवधारणा

भारत जैसे विशाल देश में भारत राष्ट्र की कल्पना भारत की एकता और अंखडता के रूप में साकार करने के लिये कोई अमूर्त वाह्य कारक काफी नहीं। भारत की सांस्कृतिक एकता का उदाहरण अक्सर दिया जाता है, और इस सांस्कृतिक एकता का रेय शंकराचार्य को जाता है। उन्होंने चार धामों की स्थापना करके भौगोलिक, राजनीतिक, आर्थिक और भाषायी विभिन्नता के इस देश को एक सूत्र में पिरोया।

बाह्य कारक यथा, विदेशी गुलामी से मुक्ति या पाकिस्तान अथवा चीन द्वारा आक्रमण अवसर पड़ने पर एकता को जन्म देते रहे, लेकिन व्यवहारिक जीवन में भोगे हुये यर्थाथ को संतुष्ट करने के लिये भावनात्मक एकता हल्की लगती है। और यही कारण है कि आर्थिक विकास के धरातल पर भारत की क्षेत्रीय विभिन्नता जब सक्रिय राजनीति का रूप लेती है तो क्षेत्रीय राजनीतिक दल जनता को अधिक प्रभावित करने लगते हैं।

भारत में क्षेत्रवाद को लेकर अनेक प्रकार की समस्यायें सामने आयी हैं, जिनमें सांस्कृतिक और आर्थिक विकास का प्रश्न मूल रूप से उठाया जाता रहा है। भाषायी और धार्मिक अलगाववाद भी क्षेत्रीय राजनीति से जुड जाता है। धार्मिक अलगाववाद ब्रिटिश शासनकाल से प्रारम्भ हुआ जब अंग्रेजों ने हिन्दू मुसलमानों में बहुसंख्यक-अल्प संख्यक का बीजारोपण किया। लोकतंत्रीय व्यवस्था में जो दरार उस समय पड़ी उसी ने आगे चलकर विभाजन की खाई का रूप धारण किया। फलस्वरूप भारतीय संघवाद की नींव का आधार धर्मनिरपेक्षता को बनाया गया। आजादी के बाद भारत में क्षेत्रीयता और अलगाववाद की भावना ने भारतीयों को भारतीयों में ही विभाजित किया। जब तक केन्द्र व राज्यों में एक ही दल की सरकारें रही तब तक केन्द्र राज्य सम्बन्धों में आपसी सामजस्य बना रहा। किन्तु नेहरू के बाद कांग्रेस में उभरते मतभेदों व निरंकुशवादी

नीतियों के कारण कांग्रेस की छवि धूमिल होती गई। फलस्वरूप राज्यों में क्षेत्रीय दल उभरने लगे, और भारत के राजनीतिक धरातल पर क्षेत्रवाद की पकड़ दृढ़ होने लगी। केन्द्र व राज्यों में अलग-अलग दलों की सरकारें गठित होने पर तनाव पूर्ण स्थिति उत्पन्न होनी शुरू हो गई।

शायद भारत राष्ट्र को मजबूत आधार देने में हमारी राजनीतिक व्यवस्था बहुत सफल नहीं रही। किसी भी प्रजातंत्र के लिये राजनीतिक दल अपेक्षित होते हैं। राजनीतिक दलों की सक्रियता के लिये लोगों का समर्थन उनकी समस्याओं को उजागर करने पर मिलता है। यहां प्रत्येक राजनीतिक दल का दायित्व होता है कि वह लोगों को उनकी तत्कालिक समस्याओं के प्रति जागरूक करके उनका निदान करने के लिये राजनीतिक सत्ता को हस्तगत करें।

भारतीय राजनीति का सकारात्मक पहलू विभिन्नताओं को समाप्त न करते हुये स्वस्थ विभिन्नताओं के बीच जीने की कला से आ सकता है। और विभिन्नताओं को स्वस्थ करने के लिये व्यक्ति के जीवन का भौतिक पहलू महत्वपूर्ण है। अगर रोजगार की समस्या कम हो सकें, जमीन पर जनसंख्या का दबाव न बढ़ने दिया जाये, भारतीय गांवों को मरने न दिया जाये, कुल मिलाकर जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं को प्रत्येक को उपलब्ध कराने की योजना गम्भीरता से बने और प्रत्येक राजनीतिक दल उसके लिये समर्पित हो तो भावना की राजनीति अलगाव पैदा नहीं कर सकती।

प्रत्येक क्षेत्र की अपनी विशिष्ट समस्यायें होती हैं, ये विशिष्ट समस्यायें भौगोलिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेश बनाती है। इन विशिष्ट समस्याओं को उस क्षेत्र विशेष के लोग ही बेहतर समझते हैं। इन समस्याओं के निदान के लिये क्षेत्र की बात करना क्षेत्रीय विकास के लिये परम आवश्यक है लेकिन थोड़ा सा अन्तर देकर क्षेत्र की समस्याओं की भावनात्मक राजनीति उछालना दूसरी ही बात हो सकती हैं। जो क्षेत्रवाद और क्षेत्रीय राजनीति का नकारात्मक पहलू हैं।

विकास की चाह का धनीभूत होतना और फिर क्षेत्र विशेष या वर्ग विशेष का आन्दोलित होना प्रजातन्त्र के अन्दर अत्यन्त स्वभाविक है। यह नितान्त स्वाभाविक था कि भारत जैसे विशाल देश से विकास की गति समान रूप से सब क्षेत्रों में एक समान की जा सकें संभव नहीं था। आर्थिक संसाधनों के विकास को लेकर पंचवर्षीय योजनाओं की भी अपनी सीमायें रही। कृषि के विकास की योजनायें भी उन्हीं क्षेत्रों में तीव्र गति से चली जहां प्राकृतिक संसाधन उपयुक्त थे। इसी प्रकार औद्योगिक विकास भी असमान ढंग से होता गया, विकास की इन गतियों ने आर्थिक असंतुलन को पैदा किया तो राजनीतिक जागृति ने इस असंतुलन को जनता तक पहुंचाने का कार्य किया। यह प्रक्रिया शनैः-शनैः चलती गयी और विकसित क्षेत्र और विकसित होते गये तथा अविकसित क्षेत्र विकास की गति में पिछड गये। यह एक कटु सत्य है कि विकास की दौड़ में शहर दौड़ते रहे और गांव रेंगते रहें। दूसरा सत्य यह भी है कि विभिन्न परिस्थितियों में रहने वाला ८० ग्रामीण अपनी सामाजिक, सांस्कृति और परम्परागत जीवन शैली में जी रहा है।

स्वतन्त्रता के बाद राष्ट्र निर्माण की इस प्रक्रिया को अगर क्षेत्रवाद का मूल आधार माने तो हम पायेंगे कि अन्य विभिन्नतायें जो गैर भौतिक हैं यथा, भाषा, संस्कृति, जाति, जनजाति, परम्परा इत्यादि आर्थिक विकास के साथ सम्बद्ध होकर विभिन्न रूपों में भारत के अन्दर अलग-अलग रूपों में दृष्टिगोचर हुयी हैं। आन्ध्र में तेंलगाना आंदोलन से लेकर नागालैण्ड, असम, मिजोरम, झारखंड, उत्तराखण्ड, पंजाब और अन्य क्षेत्रीय आंन्दोलन कहीं न कहीं आर्थिक विकास की असमानता की भाव भूमि पर या फिर आर्थिक सम्पन्नता की अभीप्सा पर टिके हुये है।

क्या इसे राष्ट्रीय राजनीति व राष्ट्रीय दलों की असफलता माना जाये कि भारत में क्षेत्रीय राजनीति क्षेत्रीय दलों के उद्भव के साथ तेजी से बढ़ रही है ? इस प्रश्न का आंशिक उत्तर इस तथ्य में निहित है कि स्वतन्त्रता आन्दोलन का इथोज जिसकी धाती आजादी के बाद भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के पास थी तिरोहित होती गयी।

स्वतन्त्रता आंदोलन का इथोज कांग्रेस ने स्वयं अपने पहलू पर अपनी कथनी और करनी में अन्तर करने की परम्परा के साथ खो दिया। यह एक महत्वपूर्ण कारण है, जिसमें क्षेत्रीय राजनीति और क्षेत्रवाद की आज के सन्दर्भ में वास्तविक बना दिया है।

भारत में क्षेत्रवाद का विश्लेषण हम एक क्षेत्र विशेष के लोगों की उन सामान्य आकांक्षाओं के रूप में कर सकते हैं, जो मिलाकर राजनीति को माध्यम बनाते हुये भारतीय संघ में अपनी हिस्सेदारी की मांग को लेकर क्रियाशील इकाई के रूप में अस्तित्व में आते हैं।

स्वतन्त्रता के बाद भारत में क्षेत्रीयता के मुख्य तीन प्रकार है -

१-अधिराज्य क्षेत्रीयता।

२-अर्न्तराज्य क्षेत्रीयता।

३-राज्य अधिकारिधिन क्षेत्रीयता।

१-अधिराज्य क्षेत्रीयता से तात्पर्य है कि जब कई राज्य (संघ इकाई) भारत की संघीय इकाई के अन्य राज्यों को स्वीकृत करने के लिये पारस्परिक रूप से इच्छुक हो यथा, भाषायी आधार पर दक्षिण बनाम उत्तर है।

२-अर्न्तराज्य क्षेत्रीयता से तात्पर्य है, किसी राज्य के सीमा विवाद, जल विवाद व केन्द्रीय योजना सम्बन्धी विवादों में दूसरे राज्यों द्वारा हस्तक्षेप करने की प्रक्रिया को समाप्त कर स्वायत्तता प्राप्त करना।

३-जब लोग अपने विकास, पृथक की तलाश व अपने क्षेत्र के स्वविकास के सकारात्मक व नकारात्मक पहलू पर स्वयं को उपेक्षित व शोषित अनुभव करें व इसी उपेक्षा व शोषण के आधार पर पृथक राज्य की मांग करें, तो इसे उपक्षेत्रीयता या राज्य अधिकाराधिन क्षेत्रीयता कहा जा सकता है। कुछ क्षेत्रों द्वारा संघात्मक शासन व्यवस्था से राज्नीतिक व प्रशासकीय इकाई के आधार पर पृथक व नये राज्य की मांग करना उपक्षेत्रीयता कहलाती है।

क्षेत्रवाद ने राष्ट्रीयता व अखंडता की भावना को प्रीाावित किया। जातीय, आर्थिक, भाषायी व सांस्कृतिक तत्वों ने भारतीय प्रजातंत्र के व्यवहारिक आयाम व धर्म निरपेक्षता से अलग क्षेत्रीय विषमता के रूप में भारतीय संघीय राजनीति पर कुप्रभाव डाला। परिणामस्वरूप शक्ति के विकेन्द्रियकरण व स्वायत्तता की मांग भारत के अन्दर निरन्तर उठती आ रही है।

भारत में क्षेत्रवाद के दो पहलू है। सकारात्मक और नकारात्मक। क्षेत्रवाद का सकरात्मक पहलू वह है जिसमें राज्य की क्षेत्रीय आकांक्षाओं का आकांक्षाओं का आधार मात्र शासक वर्ग का शोषण या विषमता नहीं हाता वरन् राजय के सामूहिक विकास हेतु क्षेत्रीय दलों का उद्भव होता है। भाषायी, आर्थिक, जातीय और भौगोलिक विषमताओं को ही क्षेत्रीय राजनीति का स्त्रोत नहीं कहा जा सकता। प्रशासकीय सुविधाएं भी क्षेत्रीय भावनाओं को उभारने में अहम है, क्योंकि जनता को अपने शासन से शिकायते अवश्य रहती हैं, उन शिकायतों को दूर करे हेतु राज्यों में क्षेत्रीय भावनाओं का उभरना स्वभाविक है। अतः क्षेत्रवाद के सकारात्मक पहलू का राज्य पुर्नगठन आयोग द्वारा भी समर्थन किया गया। आयोग की रिपोर्ट के अनुसार भाषायी और जातीय विषमता के आधार पर क्षेत्रीय राजनीति को उभारना राष्ट्रीय एकता ओर अखंडता के विरूद्ध है, किन्तु प्रशासनिक त्रुटियों को दूर करने हेतु क्षेत्रीय राजनीति को स्वीकारना उचित है।[८]

भौगोलिक, धार्मिक और जातीय विषमताओं के आधार पर उभरी क्षेत्रीयता राजनीति का सकारात्मक पहलू है। विषमताओं के आधार

पर उभरे क्षेत्रवाद में शासक वर्ग लोगों की क्षेत्रीय भावनाओं यथा, स्व पहचान की मांग, भाषायी, और संस्कृतिक विकास, स्वनिर्णय का अधिकार आदि को उभारकर उन्हें आन्दोलन के लिये प्रेरित करते है।

भारत की राजनीतिक एकता का उद्देश्य १५ अगस्त १९४७ को पूरा हुआ, तत्पश्चात प्रजातांत्रिक स्वरूप को लेकर भारत ने विकास का मार्ग स्वीकारा। वस्तुतः आजादी के बाद भारतीय राजनीति का स्वरूप विकास कके रूप में आंका जाना चाहिये। भारत के बहुआयामी समय विकास के लिये योजना आयोग (१९५७) का गठन किया गया। जिसमें उद्योग व खेती को केन्द्र बनाते हुये आर्थिक विकास की शुरूआत हुई।

राष्ट्रीय आंदोलन की धूरी के रूप में कांग्रेस एक राजनीतिक दल बनकर आया। स्वतन्त्रता के बाद केन्द्र व राज्यों में कांग्रेस का वर्चस्व रहा। शनैः शनैः कांग्रेस का एकाधिकार वाद हल्का पड़ता गया और गैर कांग्रेस वाद भारतीय राजनीति में पकड़ मजबूत करने लगा।

गैर कांग्रेसवाद के युग में क्षेत्रीय दलों का विकास शुरू हुआ जिसके अन्तर्गत आर्थिक विकास के पिछड़ेपन के कारण क्षेत्रीय असंतुलन ने राजनीति का रूप लेना प्रारम्भ किया।

क्षेत्रीयता बनाम भूमिपुत्र (सन्स आफ दि सोइल) एक महत्वपूर्ण प्रश्न है, जो इस धारणा पर आधारित है कि क्षेत्र विशेष के लोग उस क्षेत्र विशेष के अन्दर की समस्त आर्थिक, भौतिक और राजनीतिक क्रियाकलापों पर अपना क्षेत्रीय अधिकार रखते हैं। इस प्रवृत्ति का जन्म असमान विकास और असंगत आधुनिकता के फलस्वरूप अधिक हुआ है, यह प्रवृत्ति विकास की राजनीति के प्रतिफल के रूप में भारतीय राजनीतिक संस्कृति का महत्वपूर्ण पहलू बन गयी है।

राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान राष्ट्रवाद की प्रवृत्ति के अन्दर यदि समुद्र पार के विदेशी शासन से मुक्ति देश को अनुप्राणित कर रही थी तो आजादी के बाद उसी प्रवृत्ति के समानान्तर उपराष्ट्रवादी आंदोलन की भूमिका बनने लगी जिसका दायरास सिमट गया और जिसका मानसिक धरातल क्षेत्र विशेष के अन्दर क्षेत्र के बाहर के शासन से मुक्ति के रूप में सामने आया। असम, नागालैंड, मिजोरम, महाराष्ट्र, तेलगाना आदि क्षेत्रीय आन्दोलनों के पीछे इस मानसिकता की भूमिका अहम रही।

क्षेत्रीय पहचान भारत के संघीय, राजनीतिक स्वरूप में स्वीकार की गयी। इस पहचान का महत्व और स्वरूप कानूनी अधिक था, जिसका उद्देश्य था। उपराष्ट्रीयताओं का इस प्रकार विकास की समस्त देश और राष्ट्र समवेत रूप से विकसित हो सके।

१९६७ के बाद भारतीय राजनीति में विशेष परिवर्तन हुये, और राज्यों में गैर कांग्रेसी सरकारों का गठन हुआ। जिसमें से ८ राज्यों में क्षेत्रीय दल उभरे जिन्होंने पृथक पहचान व क्षेत्रीयता की मांग को सशक्त किया। वे राजनीतिक, आर्थिक व प्रशासकीय आधार पर पृथक राज्य या स्वायत्तता की मांग करने लगे, यथा, पंजाब में अकाली दल का आनन्दपुर साहिब प्रस्ताव।

कारक

भारत में क्षेत्रवाद की उत्पत्ति के कई कारण है, जिनमें मुख्यतः सांस्कृतिक व भाषायी भिन्नता, आर्थिक, जातीय, राष्ट्रवाद का अभाव, भौगोलिक स्थिति में भिन्नता व प्रतिकूल राजनीतिक स्थिति मुख्य है। जब राजनीति में उपर्युक्त तत्व उभरने लगते हैं, तो क्षेत्रीयता का जन्म होता है। यह एक कटु सत्य है। जब किसी क्षेत्र को यह आभास हो जाये कि भाषा, धर्म व आर्थिक आधार पर उनका शोषण किया जा रहा है तो वे अपनी समस्याओं को लेकर स्वायत्ता की मांग करते हैं। भाषायी आधार पर उभरी क्षेत्रीयता भारत की राष्ट्रीय एकता और अखंडता को सबसे बड़ा खतरा है।

क्षेत्रवाद के उद्भव में शनैः शनैः भाषायी कारक के साथ-साथ अन्य कारक भी जुड़ने लगे। यथा, जातीय और आर्थिक कारक (नागालैण्ड, मेघालय, मणीपुर और त्रिपुरा में) ऐतिहासिक और राजनीतिक कारक (बिहार और उत्तर प्रदेश में) सामाजिक और भाषायी भिन्नता (तमिलनाडु, केरल, मैसूर और उड़ीसा) राज्यों में उभरे कारकों ने संघवाद की जडों को कमजोर किया।

क्षेत्रवाद क्यों ?

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर कह सकते हैं क्षेत्रवाद भारतीय राजनीति का एक आवश्यक तत्व है। अतः इसप्रश्न का उत्पन्न होना स्वाभाविक है कि क्या क्षेत्रवाद भारतीय राजनीति की नियति है ? राजनीति में क्षेत्रवाद की उत्पत्ति के तीन प्रमुख कारण है।

१-आजादी के बाद लोंगो को अपने सामाजिक विकास व शक्तियों का ज्ञान हुआ शनैः शनैः लोगों में यह भावना पनपने लगी कि ब्रिटिश शासन काल में उनकी शक्तियां सीमित थी। अतः उनमें विकास व स्वपहचान कील चाह घर करने लगी। संविधान के अनुसार कल्याणकारी राज्य की स्थापना की गयी। किन्तु कल्याणकारी योजनायें राज्यों को संतुष्ट करने में असफल रही। फलस्वरूप राज्यों में यह भावना पनपने लगी कि अधिक स्वायत्ता ही किसी राज्य या क्षेत्र विशेष का विकास करने में सक्षम है। अतः क्षेत्रीय राजनीति को राज्यों के विकास हेतु प्रेरित किया गया।

२-कुछ क्षेत्रों में यह भावना उभरने लगी कि संघ द्वारा उद्योग, बांध परियोजना और वित्तीय क्षेत्र में उनकों उपेक्षित किया जा रहा है। केन्द्र का उपेक्षित व्यवहार राज्यों को अलगावाद के लिये प्रेरित करने लगा और भारतीय राजनीतिक मंच पर क्षेत्रवाद की जमीन तैयार होने लगी।

३-कुछ राजनीतिज्ञ अपने निजी उद्देश्यों व स्वार्थों को पूरा करने हेतु लोगों की भाषायी, जातीय व धार्मिक विषमताओं को उभारकर उन्हें आन्दोलन के लिये प्रेरित करते रहे है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

१-जी.एन. सिंह उद्घृत तेदुलकर, डी.जी. यंग इंडिया, हिन्दु मुस्लिम टेंशन एण्ड इट्स काज, २९ मई १९२० पृष्ठ संख्या १७४
२-वाचस्पति, इन्द्र, इंडियन फ्रीडम स्ट्रगल, साहित्य मंडल प्रकाशन, नइ दिल्ली, १९६० पृष्ठ संख्या १७५
३-मजूमदार आर०सी० हिस्ट्री ऑफ दि फ्रीडम मूवमेन्ट भाग-२ के.एल. मुखोपाध्याय, कलकत्ता, १९७५ पृष्ठ संख्या ३३०
४-पटटाभि, सीतारमैया, हिस्ट्री ऑफ दि इंडियन नेशनल कांग्रेस भाग-एक, पदमा पब्लिकेशन, १९४६, बाम्बे, पृष्ठ संख्या ५४७
५- नेहरू रिपोर्ट, १९२८ पृष्ठ संख्या १२२
६-रस्तोगी पी. आधुनिक भारत सामाजिक और राजनीतिक चिंतन, सुशील प्रकाशन, मेरठ १९७७ पृष्ठ संख्या २६२
७-दि टाइम्स ऑफ इंडिया, नई दिल्ली १६ नवम्बर १९६९, पृष्ठ-१२
८-बाम्बवाल, के.आर. नेशनल पावर एण्ड स्टेट आटोनॉमी, मीनाक्षी प्रकाश, मेरठ,१९७९, पृष्ठ १८७

Publish Research Article
International Level Multidisciplinary Research Journal
For All Subjects

Dear Sir/Mam,

We invite unpublished Research Paper,Summary of Research Project,Theses,Books and Books Review for publication,you will be pleased to know that our journals are

Associated and Indexed,India

- Directory Of Research Journal Indexing
- International Scientific Journal Consortium Scientific
- OPEN J-GATE

Associated and Indexed,USA

- DOAJ
- EBSCO
- Crossref DOI
- Index Copernicus
- Publication Index
- Academic Journal Database
- Contemporary Research Index
- Academic Paper Databse
- Digital Journals Database
- Current Index to Scholarly Journals
- Elite Scientific Journal Archive
- Directory Of Academic Resources
- Scholar Journal Index
- Recent Science Index
- Scientific Resources Database

Review Of Research Journal
258/34 Raviwar Peth Solapur-
413005,Maharashtra
Contact-9595359435
E-Mail-ayisrj@yahoo.in/ayisrj2011@gmail.com